**International Journal of Humanities and Social Science Research**
**ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22**
**Received: 23-09-2019; Accepted: 25-10-2019**
**www.socialsciencejournal.in**
**Volume 5; Issue 6; November 2019; Page No. 150-154**

# बघेलखण्ड का शास्त्रीय संगीत एक परिचयात्मक विवेचन

**अनामिका चंदानन [1], वाणी साठे [2]**
[1] शोध छात्रा (संगीत), ठा. रणमत सिंह महाविद्या. रीवा, मध्य प्रदेश, भारत
[2] शोध छात्रा (संगीत), वनस्थली विद्यापीठ राजस्थान, भारत

**सारांश**
बघेलखण्ड की धरती का संबंध प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं संगीत कला से रहा है। आदिकाल से ही बघेलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर कला की पराकाष्ठा को दोहराता रहा है जिसमें संगीत जीवन से लेकर संस्कार तक भरा पड़ा है। बघेलखण्ड में संगीत साधना का उद्देश्य सत्यम शिवम् सुन्दरम् की कला विधान साधना को चरितार्थ करना रहा है। साथ ही बघेलखण्ड की शास्त्रीय गायन परम्परा – ध्रुपद, धमाल, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, सादरा, कीर्तन आदि का प्रचलन समय–समय पर बघेलखण्ड की संगीत में रहा है। अर्थात बघेलखण्ड प्राचीन काल से ही संगीत साधना की स्थली रहा है जिसमें मधुर संगीत पुष्पित एवं पल्लवित होता रहा है एवं यहाँ की संगीत परम्परा का अनुसरण अन्य संगीत प्रेमियों ने किया तथा यहाँ की संगीत कला के प्रभाव से अन्य संगीत घरानों का प्रादुर्भाव हुआ है।

**मूलशब्दः** बघेलखण्ड, शास्त्रीय संगीत, ध्रुपद, धमार, ख्याल गायकी, सूफी भक्ति संगीत

## प्रस्तावना
बघेलखण्ड में संगीत का विचार करते समय संगीत सम्राट का जिक्र तानसेन के रूप में किया जाता है। परन्तु मात्र संगीत सम्राट का जिक्र करने से बघेलखण्ड के संगीत का पूर्ण परिचय प्राप्त नही हो सकता। इसके लिए हमें सत्यम शिवम सुन्दरम् की कलात्मक भावना का स्वर से ईश्वर तक का पहुंचने का विधान देखना होगा जो बघेलखण्ड की संगीत परम्परा का आधार रहा है। इसे ही शैव परम्परा का संगीत कहा जाता है। जो रुद्र वीणा तथा ध्रुपद धमार गायन शैली के रूप में कल्चुरी काल से लेकर आज तक का कल्चुरी एवं बघेल राजवंशों की सांगीतिक यात्रा तथा यहाँ के क्षत्रीय वर्ण और ब्राम्हण वर्ण के संस्कार गीतों तथा शास्त्रोक्त तंत्र साधना का विकास समाहित है जिसमें तंत्र, मंत्र, प्राण, स्वर, इश्वर के क्रमिक संबंध आध्यात्मिक संगीत का परिचय देता है।

बघेलखण्ड के सांगीतिक परिचय में यहा के संस्कार गीतों का बघेली भाषा में लेखन, गायन एवं उनकी भावनात्मक कल्पना तथा संगीत का दैनिक जीवन में रचे–बसे का प्रमाणिकता दर्शाता है। आज की आधुनिक हिन्दी का विकास क्रम भी बिना इनके पूर्ण नही होता। बघेली संस्कार गीत जन्म से लेकर पुनः एक व्यक्ति के जन्म का क्रमिक चक्र बनाता है। जिसे बघेली संस्कार चक्र कहा जाता है। आध्यात्मिक साधना का सांगीतिक पक्ष स्त्रोत, स्तुति, आरती, क्रीति, मंगल गान का प्रयोग यह सब ईष्ट से अभीष्ट तक पहुंचाने का सोपान बनाता है। जो कि बघेलखण्ड की संगीतिज्ञ जीवन शैली में रचा–बसा है।

**1. बघेलखण्ड में संगीत का उद्‌गम एवं विकासः** तानसेन के पूर्व से ही बघेलखण्ड में ध्रुपद की शैव परम्परा (कल्चुरी कालीन) की गायन वादन परम्परा थी और राजाश्रय में निरंतर चल रही थी। तानसेन के समय महाराजा रामचन्द्र बघेला (1555–1592) (राम सिंह बघेला) बघेलखण्ड के काल में तानसेन की हरीदासी परम्परा को मिश्रित कर ध्रुपद गायन शैली को नया आयाम दिया। इस तरह बघेलखण्ड के गायन संगीत घराना का विकास प्रगतिशील हुआ। महाराजा रामचन्द्र के वंश परम्परा के उत्तरार्द्धकाल में बघेला वंश के सभी राजाओं ने इस परम्परा का अनुसरण किया तथा इनके राज्य में संगीत साधकों को राजाश्रय मिलता गया। इस तरह यह परम्परा अवाध गति से सन् 1833 से 1854 तक तथा आगे भी चली। इसमें मूलतः ध्रुपद की बाँधवगढ़ परम्परा की गायन शैली, संतो की कीर्तन शैली भी, विकसित हुई जो ध्रुपद धमार के तरीके से गाई जाती थी। रीवा की ध्रुपद गायन शैली की गोविन्दगढ़ परम्परा जिसमें ध्रुपद, धमार तथा भक्तिपद, गाया जाता था। इसके प्रमुख गायक कलाकारों में वक्तावर बाबा ध्रुपदिया, दौलत जी ध्रुपदिया (जो बाद में बाराणसी चले गये थे) साधू बाबा जो कुछ समय के बाद बंगाल चले गये थे तथा बप्पा जी ध्रुपदिया रीवा में रहे। ये रीवा घराने के ध्रुपद गायन शैली के प्रमुख गायक थे।[1]

रीवा महाराजा विश्वनाथ सिंह अपने युवराज काल में सेनिया घराने के प्रसिद्ध ध्रुपद गायक तथा तंत्रकार बहादुर सेन एवं जाफर खान के शिष्य रहे तथा इसी समय में उन्होने ध्रुपद गायन की सेनिया परम्परा तथा तंत्रीनाद विद्या की सेनिया परम्परा का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

**2. डॉ. नाटकर्णी के अनुसारः** ''मध्यकाल के संगीतज्ञों में रीवा

राज में प्यार खाँ जो सेनिया घराने के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ थे रीवा महाराजा विश्वनाथ सिंह के दरबार में आश्रय लिया।[2] इसी समय में अफगानी मुसलमान जो अफगानिस्तान से घोड़े के व्यापार के उद्देश्य से हिन्दुस्तान में दिल्ली, ग्वालियर और रीवा आते थे वो अपने साथ समय व्यतीत करने के लिए सूफी गीतों के गायन के रबाव बजाया करते थे। इनकी इस गायन वादन शैली को रीवा महाराजा विश्वनाथ सिंह ने सुना देखा और इसमें अंतर्राष्ट्रीय संगीत का मिश्रण करके सूफी शैली एवं ध्रुपद गायन शैली का प्रयोग कर नई गायन शैली का विकास किया।

रीवा राजघराने में आश्रय प्राप्त सूफी गायकी के प्रसिद्ध गायक कलाकार रबाविये इमाम शाह (बड़ी दरगाह) थे जो स्वयं सूफी संत थे तथा उन्होने सूफी संगीत का रीवा की धरती पर खूब विकास किया। इसका उल्लेख शबद प्रीति ग्रंथ में पृ.नं.37 पर किया गया है। दूसरे प्रमुख नामों में मस्तानशाह (छोटी दरगाह) का नाम सूफी गायकी के लिए उल्लेखनीय है। तीसरा नाम भूलनशाह जो फकीर थे और उपरहटी कोतवाली के समीपस्थ दरगाह में रहते थे इनकी मजार सड़क के किनारे ही बनी हुई है जहाँ वार्षिकोत्सव (उर्स) मनाया जाता है। इसी खानकाही परम्परा के गायकों में शाहताज बाबा मुहिब्बे अली थे जिनकी मजार मुकुन्दपुर रीवा मे है। जहाँ सालाना उर्स और कब्बाली का आयोजन हुआ करता है। ये सभी सूफी संगीत गाया बजाया करते थे।[3]

**3. बघेलखण्ड के रीवा दरवार की संगीत परम्परा**: महाराजा विश्वनाथ सिंह के समय में ही प्रसिद्ध ख्याल गायक बड़े मोहम्मद खाँ जो ग्वालियर के शक्कर खाँ के वंशज थे। कड़क बिजली तान की ऐतिहासिक घटना घटने के बाद हस्सू, हद्दू खाँ को ग्वालियर छोड़कर ग्वालियर राजा दौलतराव सिंधिया से नाराज होकर सन् 1851 में रीवा आ गये[4] इस तरह ग्वालियर की ख्याल गायकी इनके माध्यम से रीवा में विकसित होने लगी। इनके पांच पुत्रों का रीवा की संगीत घराने की परमपरा में बहुत बड़ा योगदान है। कुतुबअली, मुनव्वर अली, मुबारक अली, वारिश अली तथा मुराद अली ये सभी गायक ख्याल गायकी के क्षेत्र में रीवा के साथ–साथ पूरे हिन्दुस्तान के अन्य घरानों के विकास में भी सहयोग किया।[5] इन ख्याल गायको में मुनब्बर अली गायक के साथ–साथ अच्छे तंत्रकार थे। दिलाबर अली और करम अली की जोड़ी इस समय के देश के प्रसिद्ध गायकों में थी। दिलावर खाँ के शिष्यों में नजीर खाँ, जो ग्वालियर से रीवा संगीत सीखने आये थे। रीवा में बहुत समय तक रहे। बाद में मेवाती चले गये और मेवाती घराने की नींव डाली। दिलावर खाँ के ये दत्तक पुत्र थे। इनके शिष्यों में पंडित राधिका प्रसाद, नंदलाल, बैजनाथ इत्यादि प्रमुख संगीत कलाकार थे। करम अली के शिष्यों में शेख अब्दुल्ला इमाम बख्श, शाह बाबा आदि थे। नजीर खाँ के शिष्यों में कुंदन खाँ और गुलाम हुसैन थे, कुंदन खाँ के सागिर्दो में से स्व.आर.जे.पसाना और इनके शिष्य नागेन्द्र शुक्ला है। गुलाम हुसैन के शिष्यों में इम्तियाज हुसैन, इरसाद हुसैन है जो आज भी संगीत की सेवा कर रहे हैं।

**4. बघेलखण्ड की शास्त्रीय गायन शैली** : बघेलखण्ड में गायन शैली की परम्परा घरानेदार गायकी के सभी गुणों से परिपूर्ण थी। गायकी में लालित्य आकर्षण और जनमानस की रुचि का पूरा–पूरा समायोजन था। इन तमाम विशेषताओं के कारण बघेलखण्ड के रीवा घराने का सम्बन्ध अन्य कई घरानों जैसे आगरा, लखनऊ, जयपुर और वेतिया, मेवाती ओर पटियाला आदि से बाद में जुड़ा और रीवा घराने के कलाकार इन घरानो में जाकर संगीत की शिक्षा प्रदान किये। यहीं के उस्ताजों ने इन घरानों को परिवर्धित किया तथा ध्रुपद धमार की गायकी की विशेषताओं को सम्मिलित किया।

बघेलखण्ड की संगीत गायन शैली को तीन भागों में विभक्त किया गया है–

अ. ध्रुपद–धमार की शैली,
ब. सूफी भक्ति संगीत शैली
स. ख्याल शैली

**अ. ध्रुपद धमार की शैली** : बघेलखण्ड की ध्रुपद परम्परा में ध्रुपद धमार गाने का मूल स्रोत शैलीगत रूप से शैव सम्प्रदाय के आचार्यो द्वारा कल्चुरी काल के शिवालयों से प्रचारित रहा। कल्चुरी राजाओं के वैवाहिक संबंध बघेलों से हुए थे। महाराजा कर्णदेव की महारानी कल्चुरी वंश की राजकुमारी थी इसी है,है राजकुमारी के परिणय संस्कार के परिणाम स्वरूप बघेलों मे शैव परम्परा के ध्रुपद धमार का प्रचार बढ़ा। इनके आचार्यो में प्रभाचार्य और शैवाचार्य प्रमुख रहे जिन्होंने शिवाय सम्प्रदाय की शिक्षा साहित्यिक तथा सांस्कृतिक दोनो रूप से इस है–है राजकुमारी के माध्यम से आगे विस्तारित किया। बघेल वंश की राजमाता बनने के बाद इनके राजकुमारों में शैव परम्परा की संगीत का प्रचार प्रसार हुआ। तथा बांधवगढ़ मे शैव सम्प्रदाय के संगीत का प्रचार रहा। मध्यकाल के पुर्वार्द्ध काल में निगुर्ण तथा सगुण ब्रह्म के उपासक संतो के द्वारा ध्रुपद शैली के कीर्तन परम्परा का विकास सेन जी महाराज, गुरू रामदास, पूरन साहिब, कबीरदास, स्वामी गोविन्ददास (15वीं शदी) आदि संतो के माध्यम से बांधवगढ़ परम्परा में प्रसारित हुआ।

**ब. सूफी भक्ति संगीत शैली** : बघेलखण्ड में बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में महाराजा जय सिंह के समय (1809–1833) में सूफी संगीत की खानकाही परम्परा का विकास हुआ। बड़ी दरगाह इमाम शाह नाम के फकीर का यह इमामबाड़ा है जो बड़ी दरगाह अमहिया के नाम से जाना जाता है इनके समर्थक इस्लाम की परम्परा के साथ–साथ सूफी अलहदा कायदे के अनुरूप मर्सिया रुवाई, कौल, परवरदिगारी तारीफे हुजूर, तारीफे रक्षक, इत्यादि का प्रचार इसकी सूफियाना गायन शैली पर था। इसका सांगीतिक मूलाधार दिल्ली की इन्द्रप्रस्थमत, खुसरोमत के प्रचार–प्रसार के माध्यम से अरबी, ईरानी, फारसी, परसियन इत्यादि के प्रभाव से निर्मित उर्दू पर भी गहरा प्रभाव रहा है।

छोटी दरगाह सिद्ध फकीर इमामशाह के समकालीन मस्तान शाह रीवा आये थे और छोटी दरगाह पर रम गये। इसी परिसर में आगे चलकर एक प्रसिद्ध फकीर हजरत श्याम शाह भी इसी दरगाह पर थे। इनकी सूफी परम्परा बड़ी दरगाह की परम्परा जैसी ही थी।

कोतबाली दरगाह भूलन शाह की दरगाह के नाम से प्रसिद्ध है ये फकीर संत भी इन्द्रप्रस्थीय मत की सूफी गायन शैली तथा ख्यालनामा शैली द्वारा अपने परवरदिगार की तारीफ हेतु संगीत की तत्कालीन सभी महत्वपूर्ण धुनों को स्वीकार कर मिश्रण के कुप्रभाव की चिंता किए बगैर उपयोग करते रहे। तथा अपनी इच्छानुसार अल्लाह की तारीफ में दिलोजान से रमे रहे। जिसमें ठुमरी, दादरा, ठुमका, फटका, सादरा, इत्यादि लोक शैली की गीतों में परिवर्द्धन कर उसे शास्त्रीय स्वरूप देकर भारतीय शास्त्रीय संगीत में प्रयोग किया।

**स. ख्याल शैली** : अठारहवीं शताब्दी के पूर्व बघेलखण्ड में कीर्तन, सूफी गायन शैली और ध्रुपद धमार गायन शैली भजन, पद आदि गाने का प्रचार तो था परन्तु ख्याल शैली का प्रचार था। ग्वालियर से नाराज होकर बड़े मोहम्मद खाँ साहब (ख्याल गायक) पहले जयपुर गये इसके बाद दिल्ली गये फिर लखनऊ गये इसका मूल कारण था कि इनके वंशज के अन्य गायक यहां किसी न किसी राजाश्रय मे थे। इतिहास इस बात का गवाह है कि यह विन्ध्य धरा का नरेश ऐसे इल्मदार सिद्ध संत फकीर

इत्यादि को हमेशा से शरण देता आया है।[6] रहीमदास के दोहे में लिखा हुआ है–

चित्रकूट में रमि रहे रहिमन अवध नरेश,
जा पर विपदा परत है ते आवहि इहिं देश।।

इसी परिस्थिति के अनुकूल ख्याल गायक बड़े मुहम्मद खाँ साहब को महाराजा विश्वनाथ सिंह रीवा ने अपने राज दरबार में एक हजार रुपये प्रतिमाह की तनख्वाह पर नौकरी पर रखा था। इस तरह रीवा में फिकरावंदी ख्याल गायकी की शुरुआत बड़े मो.खाँ साहब द्वारा किया गया। इनके बच्चों में कुतुबअली, मुनब्बर अली, मुबारक अली, वारीस अली, मुराद अली, रजव अली, फजल अली, नजीर खाँ, इत्यादि ख्याल गायक बघेलखण्ड की धरती पर पले बढ़े और ख्याल गायकी के फिकरावंदी शैली के विद्वान ख्याल गायक बने तथा अन्य घरानों को परिवर्द्धित करने में सहयोग किये। जैसे उदयपुर घराना, राजस्थान का जयपुर घराना, पटियाला घराना, लखनऊ घराना, मेवाती घराना इत्यादि है जो घरानों के रूप में आज सारे हिन्दुस्तान में विस्तारित है। रीवा घराने की ख्याल गायन शैली के विस्तार के रूप में ग्वालियर की शैली, रीवा की सुफियाना शैली, रीवा की कीर्तन व ध्रुपद शैली इन सभी शैलियों का प्रभाव समय और परिस्थिति के अनुरूप रीवा की ख्याल गायकी पर पड़ा। परिणामतः यहाँ के गायक बादक रीवा दरवार के अलावा संगीत जीवी के रूप में अन्य राजदरवारो में तथा अन्य संगीत जीवियों के साथ सहयोग कर ख्याल शैली के संगीत का प्रचार प्रसार किए।

**5. बघेलखण्ड के संगीत गायन शैली की विशेषताएँ** : बघेलखण्ड संगीत की ध्रुपद शैलियों में चारों वानियों का प्रचार था। नौहार वानी, खण्डार वानी, डागुर वानी ओर गोवरहार वानी आदि। इन सभी की विशेषताओं का शास्त्रीय पद्धति में वर्णन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार हुआ है। तानसेन के आगमन से यहाँ डागुरवानी की प्रबलता रही और महाराजा विश्वनाथ सिंह के शासनकाल तक रीवा का बांधवगढ़ घराना तथा गोविन्दगढ़ घराना इत्यादि ध्रुपद के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। वाणभट्ट के साहित्यिक परम्परा का अवगाहन भी यहाँ के भॉटचरणों द्वारा ध्रुपद धमार में कवित्त और प्रिमलू पक्ष पर काफी आकर्षक रहा है। डागुर वाणी का मूलाधार वीणा परम्परा रही है क्योकि तार में घात और प्रत्याघात जिसे आज वर्तमान में डारा से दारा कहा जाने लगा है यही डागुर वानी का मूल स्रोत है। ध्रुपद के बिद्ध और अनिबद्ध दोनो पक्षों में यहाँ रुद्र वीणा, सुर सिंगार, सुर बहार इत्यादि के आधार को ध्रुपद शैली में प्रस्तुत कर, भाषा के प्रभाव को मिश्रण कर ध्रुपद की अन्य वाणियों का विस्तार मात्र वीणा के रूप में करने के विधान का उल्लेख ब्रजभाषा में रचित 'सेतु' नामक टीका जिसकी रचना रीवा के महाराजा विश्वनाथ सिंह (ई. 1833–54) के दरवारी कवि एवं संगीतज्ञ गंगाराम ने की है, में किया गया है।[7]

ख्याल की गायन शैली में वंदिशों पर प्रयुक्त भाषा का ख्यालनामा भिन्न–भिन्न स्थानों से होते हुए जैसे भ्रमण किया है उस तरीके से उनकी वंदिशों का प्रभाव उस स्थानीय बोली भाषा के साथ समायोजित है। कब्बाली परम्परा का मूलाधार इन्द्रप्रस्थ मत है जो फिकराबंदी ख्याल गायकी की मूलाधार है। इसकी शुरुआत लखनऊ से हुई थी और बड़े मो.खाँ के वंशजों द्वारा लखनऊ से ग्वालियर में इस ख्याल गायकी का प्रचार किया गया तथा ग्वालियर से बड़े मो.खाँ रीवा आये अतः ग्वालियर की भाषा का प्रभाव उनकी गायकी पर विद्यमान रहा। रीवा में रच बस जाने के पश्चात यहाँ की ध्रुपद शैली का प्रभाव भी इनकी गायन शैली पर पड़ा तथा रीवा में तत्कालीन प्रवासी पखाबज वादक संगीतज्ञ कोदऊ सिंह जो मूलतः दतिया के निवासी थे जो महाराजा विश्वनाथ सिंह की संगीत दरवार का हिस्सा थे। अतः कलाकारों के बीच की स्पर्धा चरम सीमा पर हो गई। परिणामस्वरूप फिकरावादी ख्याल गायकी में लय का छंदात्मक पक्ष की ताने तथा अलंकारिक तानों की छंदबद्धता ध्रुपद पक्ष के अनिवद्ध जोड़ पक्ष से लेकर फिकरावंदी ख्याल गायकी में सम्मिलित किया गया। जोरदार आवाज, ख्याल गायन में काक का प्रयोग, बोल बनाव का विशेष अंदाज यहाँ की ख्याल गायकी की विशेषता हो गई। इन शास्त्रों की उस्ताज गुलाम हुसैन खाँ की हस्तलिखित मौसकी उल रीवा दरवार ख्यालनामा से लिखा गया है जो वर्तमान में सुनादकला केन्द्र रीवा के सहयोगी कलाकार डा.नागेन्द्र नटवर के पास आज भी सुरक्षित है।

**6. बघेलखण्ड के प्रमुख संगीतज्ञ** : सर्व श्री धन्सूर, गंगाराम, बुद्धप्रकाश, धौंधी, ये रीवा घराने की गोविन्दगढ़ शाखा के कलाकार थे। सर्वश्री बख्तावर बाबा (ध्रुपद गायक), उस्ताद श्री मोहम्मद खाँ, हाजी श्री जहूर अली, श्रीमती कनीज फातमा, सीताराम, बिहारी जी, साधू बाबा, बच्चा जी, जगन्नाथ, रघुनाथ, मोहनलाल, इत्यादि का नाम बघेलखण्ड के मूर्धन्य अद्भुत कीर्ति स्थापित करने वाले विशेष कलाकारों में है। इसके बाद गोविन्दगढ़ से रीवा उपरहटी निवासी कलाकारों में साधू बाबा, साधू बाबा के शिष्य मोहनलाल, और इनके शिष्य कन्हैयालाल बांधवीय उपरहटी रीवा में रहे व रीवा दरवार को अपने संगीत में सुशोभित किया। रीवा महाराजा विश्वनाथ सिंह के समय में मृदंग सम्राट कोदऊ सिंह कुछ समय तक रीवा में रहे। नौवीदीन, रामकृपाल, रामदुलारे, पं.बाल्मीक प्रसाद इत्यादि भी प्रमुख गायक रहे हैं। जो महाराजा गुलाब सिंह के समय में प्रसिद्ध रहे (1918–1946) रीवा के ख्याल घराना के गायकों में मुख्य रूप से मा.हासिम खाँ, सुक्खन खाँ, शक्कर खाँ, जो कि बड़े मो.खाँ साहब के परिवार से थे। कुतुबअली, मनौब्बर अली, वारस अली, मुराद अली तथा मुवारक अली के पुत्र दिलावर अली। मुनव्वर अली के शिष्य रजव अली, फजल अली, तथा मुनौब्बर अली के कन्या वर्ग में मेदु खाँ, छोटे मु. जो हद्दू खाँ की वंश परम्परा में थे परन्तु बड़े मो. के परिवार के ही थे। इन्हीं में रहमत, हैदर व दो कन्या, जाफरुद्दीन व अल्लावन्दे, घग्घेनजीर खाँ, दिलावर खाँ, करम अली खाँ, नजीर खाँ, गुलाम हुसैन खाँ, सर.आर.जे. पसाना एवं नागेन्द्र मिश्र आदि रीवा घराने के प्रमुख गायको में हैं।

बघेलखण्ड के कुछ प्रमुख संगीतज्ञों का परिचय निम्नानुसार है–

**उस्ताद श्री मुहम्मद खाँः** आप बघेलखंड के लब्ध प्रतिष्ठित संगीतज्ञों मे थे जिनकी कीर्ति–गाथाएँ आज भी गाई जा रही हैं। रीवा के नरेशों ने इस महान संगीताचार्य की वंशपरम्परानुगत कला को प्रश्रय देकर अपने संगीतानुराग का जो परिचय दिया है, उसका भी एक इतिहास है। उस्ताद श्री मुहम्मद खाँ, स्वर्गीय महाराजा श्री विश्वनाथ सिंह जूदेव (बघेलखंड नृपति) के शासनकाल में आए थे और रीवा नगर को अपनाकर उन्होने अपनी सुमधुर स्वर–लहरी से जिन अलौकिक घटनाओं को जन्म दिया था, वे सचमुच संगीत के प्रभाव की परिचायिका है। आपका व्यक्तित्व महान था। उदार होने के कारण आपकी विपुल संपत्ति दोनो की ही सहायता में काम आई। संगीत शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य से महाराज विश्वनाथ सिंह जू देव ने आपको अपना गुरू बनाया था।[8] उस्ताद मुहम्मद खाँ साहब की अपने समय में विशेष प्रतिष्ठा थी। राज्य की ओर से आपको पैर में सोना पहनने की आज्ञा मिल चुकी थी। महाराजा विश्वनाथ सिंह जूदेव ने आपको सदैव गुरु–रूप में अपनाया और दरबार में एक ताजीमी सरदार के समान आपको इज्जत दी। पीनस में बैठकर आप राजमहल जाते और हांथी पर सबार होकर घर आया करते थे। मुसलमान होने पर भी आम भगवान रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र के प्रति पूर्ण आस्था रखते थे, यह आपकी धार्मिक उदारता थी। संगीत रत्न पं. कन्हैयालाल जी, 'बान्धवीय' (रीवा निवासी) से ज्ञात हुआ है कि

रीवा मे ध्रुपद के प्रसिद्ध गायक श्री धोंधी ने भी मथुरा में जाकर अपनी कृष्णभक्ति का परिचय दिया था। आप मुसलमान थे, लेकिन भगवान कृष्ण के अनन्य भक्त होने के कारण आप के रचे हुए पदो में विशेष रूप से श्री राधिका की मान लीला का उल्लेख हुआ है। कहा जाता है कि एक बार आप रीवा से पैदल ही मथुरा गए। राधा कृष्ण का निरन्तर जाप करते हुए आप ब्रजभूमि की सीमा में पहुँचे और एक आतुर भक्त की तरह राधा–राधा चिल्लाने लगे। मथुरा के प्रसिद्ध देबालय 'द्वारिकाधीश' के सामने खड़े होकर श्री धोंधी ने कुछ विनय पद गाए और सजल नेत्रो से उन्हे श्री राधा की मूर्ति का आभास मिला। वे मंदिर की सीढ़ियों पर चड़ने लगे। मुसलमान जानकार पुजारियो ने उन्हें मंदिर के भीतर न जाने दिया। विवश होकर वे देवालय के पश्चिम भाग की ओर चले गए। रात भर श्री राधा, श्री राधा की टेर लगाये रहे। भगवान द्वारिकाधीश ने स्वप्न देकर मंदिर के प्रधान पुजारी को अपने भक्त धोंधी को समीचीन भक्ति का परिचय कराया। प्रातःकाल होते ही देवालय के पुजारियों ने धोधी को भगवान के सामने लाकर बैठा दिया।

**श्री ज़हूरअली** : आपका जन्म रीवा में सन् 1839 एवं मृत्यु सन् 1889 में हुई। आप सूफी साधक संगीत प्रेमी और कवि थे। आपके प्राप्त जीवन चरित्र से पता चलता है कि पहले आप एक साधारण गृहस्थ थे। रंगाई का काम करते हुए आपने अपने जीवन का बहुत कुछ अंश व्यतीत किया। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती दुलारी (दुलरिया) थी। साधु–संग के संगत में रहने के कारण श्री जहूर अली सदैव फकीरों को तलाश में रहते थे और समय मिलने पर सूफी काव्यों के अध्ययन से अपनी प्रेम साधना की भावना को शान्त तथा उत्कृट बनाते थे। मधुर स्वरो के लिए आप में स्वाभाविक आकर्षण था। सहसा रीवा निवासिनी हुसैनी ज्ञान नामक वेश्या के प्रति आपका पवित्र आकर्षण हुआ और आप उसके रसीले गीतों की ओर इतने झुके कि यह संसार ही आपको निस्सार प्रतीत होने लगा। लेकिन यह प्रेम पुनीत था, इसमें वासना का अभाव था। जिस प्रकार महाकवि घनानन्द की सुजान ने एक दिन घनानन्द को आनन्दमय बनाकर मोक्ष पथ का पथिक बना दिया था उसी प्रकार हुसेनी जान के मधुर स्वरो ने श्री ज़हूरअली को ईश्वर भक्त श्री हुसैन की याद दिलाई और शनैः शैनः वे प्रेमानुभूति में बिरहानुभूति की गंभीरता का चिंतन करने लगे तथा एक सच्चे साधक के समान अपने परमात्मा की उपलब्धि मे लग गए। उन्हे सर्वत्र अलौकिक सौन्दर्य की झलक प्रतीत होने लगी। वे अपने अलबेले प्यारे के गीत गाने लगे। उन्हे अपने ही हृदय में प्रेममयी भगवान का अस्तित्व ज्ञात हुआ। श्री ज़हूर अली के भजन बड़े सरस और आध्यात्मिक हैं। इनमें संसार की क्षणभंगुरता, कर्म की प्रधानता, ईश्वर की सर्वव्यापकता आदि का गहरा चित्रण मिलता है।[9]

**वख्तावर जी (वख्तावर बाबा)** : वख्तावर जी और दौलत जी दो भाई थे। दोनो भाईयों की संगीत शिक्षा उनके बाबा राम गुलाम जी के पास हुई और दोनो भाई रीवा नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह के दरवारी गायक थे। जब राम गुलाम जी वाराणसी चले गये तब रीवा महाराज ने जो कि स्वयं एक उच्च कोटि के संगीतज्ञ थे उन दोनो भाईयों को संगीत की शिक्षा दी। कुछ दिन पश्चात दौलत जी काशी नरेश महाराज ईश्वरी सिंह के दरवार में चले गये। इस प्रकार उनकी शिष्य परम्परा पहले रीवा और बनारस मे फैली और फिर इसका प्रभाव धौलपुर और बंगाल में भी हुआ। रीवा में वख्तावर जी और दौलत जी को महाराज विश्वनाथ सिंह के द्वारा मोहम्मद खाँ साहब के घराने की अनेक चीजे मिल गई थी। बनारस के बलदेव जी और मुनीम जी को भी यही चीजें परम्परा से प्राप्त हुई थी।[10] जनश्रुत के अनुसार एक बार उदयपुर के किसी प्रसिद्ध मंदिर में वख्तावर जी दर्शन करने गये। पट बंद थे और पुजारी ने समय से पहले पट खोलना स्वीकार न किया। वख्तावर जी ने विश्वनाथ सिंह रचित राग सागर का गायन करके पटों को खोल दिया था।[11] वख्तावर जी की परंपरा रीवा, बाराणसी, आदि स्थानों में आज भी मौजूद है।

**मृदंग सम्राट कोदऊ सिंह** : मृदंग सम्राट कोदऊ सिंह के जीवन का प्रथम भाग अंधकारमय है। अनेक छानवीन करने के पश्चात जिन तत्वों को संग्रह किया जा सका है उनके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उनका जन्म संभवतः बांदा (1815 ई) मे हुआ था। कोदऊ सिंह की शिक्षा मुख्य रूप से मृदंगाचार्य महंत श्रीदास जी के तत्वाधान मे हुई। सन्यास ग्रहण करने के पूर्व श्रीदास जी का नाम लाला भगवानदीन मृदंगाचार्य था।[12] कोदऊ सिंह की कला का पोषण मुख्यतः लखनऊ, रीवा और दतिया के राज दरबारो मे हुआ। वहाँ के राजाओं ने उनकी कला की प्रशंसा की तथा समय–समय पर पुरुस्कार देकर उन्हे आत्म सम्मान के साथ जीवन निर्वाह करने में समर्थ बनाया। उनकी निर्भीकता पर प्रसन्न होकर राजा भवानी सिंह ने उन्हें 'सिंह' की उपाधि दी थी, तभी से वे कोदऊ सिंह कहलाने लगे। वास्तव में ये जाति के ब्राम्हण थे और दतिया में 'कोदऊ महराज' कहकर ही लोग उनका अभिवादन करते थे।[13] कोदऊ सिंह नबाव वाजिद अली के समय लखनऊ दरबार में प्रायः दो वर्ष रहे। रीवा नरेश महाराज विश्वनाथ सिंह के पास वे प्रायः 4–5 वर्ष तक रहे। आठ मास पर्यन्त प्रतिदिन महाराज नये तालो में मृदंग गाते थे और कोदऊ सिंह संगत करते थे, इसके अतिरिक्त कोदऊ सिंह का मृदंग वादन स्वतंत्र रूप से भी हुआ करता था।

**मुनव्वर अली खाँ**ः मो.खाँ के 4 पुत्र थे मुरादअली, कुतुबअली, मुनव्वर अली और मुबारक अली। मुराद अली लखनऊ चले गये थे। मुनव्वर अली के पुत्र दिलवार अली खाँ के कब्र पर उत्कीर्ण शिलालेख के अनुसार मुबारक अली जयपुर चले गये थे और मुनव्वर अली रीवा में ही रहे।[14] मुनव्वर अली रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह के दरवार मे थे। जनुश्रुति के अनुसार खाँ साहब महाराज रघुराज सिंह को शास्त्रीय संगीत की शिक्षा देते थे।

**दिलावर अली खाँ और करम अली खाँ** : संगीत के क्षेत्र में मो. खाँ साहब के पश्चात उनके पौत्र दिलावर अली खाँ ने भी विशेष ख्याति प्राप्त की। आप गायन एवं वीणा वादन दोनों में ही दक्ष थे। दिलावर खाँ और उनके छोटे भाई करम अली खाँ दोनों का अधिकांश समय महाराजा व्यंकट रमण सिंह के समय रीवा दरवार में व्यतीत हुआ। करम अली खाँ गायन में दक्ष थे। इनका स्वभाव मिलनसार होने के कारण रीवा में उनके अनेक शिष्य हुए। दिलावर खाँ साहब के शिष्य भी बहुधा करम अली खाँ साहब से ही संगीत सीखते थे। दिलावर खाँ और करम अली खाँ दोनों भाई के कोई सन्तान न थी। दिलावर खाँ के शिष्य नजीर खाँ ने ही उनके लिए पुत्रवत कार्य किया। रीवा के घोघर मुहल्ले मे दिलावर खाँ था घर बना हुआ था। यही पर दिलावर खाँ की कब्र बनी हुई है और उसी के साथ एक बड़ा शिलालेख भी गड़ा हुआ है जिसमें माहिरेमीसी की उस्ताद दिलावर अली खाँ का उल्लेख है। इसमें उनके वंश का परिचय भी दिया हुआ है जिनसे इनके ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन होता है।

## निष्कर्ष

भारतीय संगीत परम्परा में बघेलखण्ड का अप्रितम स्थान रहा है। दिल्ली जा रहे मिया तानसेन की डोली को बघेलखण्ड (रीवा) के रसिक राजा रामचन्द्र जूदेव द्वारा कन्धा लगाने की ऐतिहासिक घटना सर्वविदित है। सन् 1833 ई. में महराजा विश्वनाथ सिंह जूदेव राजगद्दी पर विराजे वे संगीत के रसिक ही नही स्वयं एक अच्छे संगीतज्ञ एवं साहित्यकार थे। उन्होंने संगीत रघुनन्दन नामक एक संगीत ग्रन्थ की रचना की थी। देश के अनेक उत्कृष्ट कलाकार उनके दरबार को सुशोभित करते थे, जिनमें गायक बड़े मोहम्मद खाँ, उ. बक्तावर खाँ ध्रुपदियें, साधू बाबा तथा प्यार खाँ के नाम बघेलखण्ड के उत्कृष्ट कलाकारों में शुमार प्राप्त है। साथ ही उ. प्यार खाँ जिन्हे लखनऊ के नबाव बाजिद

अली शाह के गुरू होने का भी सम्मान प्राप्त हुआ है वह बघेलखण्ड के उत्कृष्ट कलाकारों में से एक थे। तत्पश्चात् महाराजा रघुराज जूदेव का राजकाल भी संगीत की दृष्टि से गौरवशाली रहा है। महाराजा रघुराज सिंह के पश्चात् महाराजा गुलाब सिंह एवं महाराज मार्तण्ड सिंह जूदेव का समय आया इन दोनो ने भी अपने वंश के परम्परागत संगीत संस्कार को यथावत कायम रखा। इस प्रकार बघेलखण्ड प्राचीन काल से ही संगीत की साधना स्थली रहा है। जहाँ पर उस्ताद श्री मो. खाँ, जहूर अली, बख्तावर बाबा, मृदंग सम्राट कोदऊ सिंह, मुनब्बर अली खाँ तथा दिलाबर अली खाँ जैसे ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ बघेलखण्ड की संगीत परम्परा को अवाध गति से बढ़ाने में अविस्मरणीय योगदान दिया है। अर्थात भारत वर्ष की हृदय स्थली मध्यप्रदेश तथा मध्यप्रदेश की हृदय स्थली बघेलखण्ड उत्तम सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत कला का आज भी एक जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करता है।

## सन्दर्भ सूची


1. डॉ. सन्नू खुराना – गायन के घरानो का विकास दिल्ली पब्लिकेशन, पृ.20
2. डॉ. बी.एन. नाअकर्णी – मध्यकाल के संगीतज्ञ, पृ.5
3. आजकल उर्दू अखवार – लखनऊ प्रकाशन अगस्त 1956, पृ. 12
4. डॉ. सन्जू खुराना – खयाल गायकी में विविध घराने, पृ. 6
5. डॉ. आबान ए. मिस्त्री – पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, पृ. 183
6. अनामिका चंदानन – "वर्तमान उत्तर भारतीय शास्त्रीय गायन के परिप्रेक्ष्य में घरानों एवं शासकीय शैक्षणिक संस्थाओं की शिक्षण पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन" (एक समालोचना), अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अ.प्र. सिंह वि.वि. रीवा (म.प्र.)
7. रामचन्द्र परांजपे – संगीत बोध, पृ. 17
8. श्रीचन्द्र जैन – मध्यप्रदेश के मुसलमान हिन्दी कवि – चिरगाँव (झाँसी) ज्येष्ठ–2–2014, पृ. 105
9. श्रीचन्द्र जैन – मध्यप्रदेश के मुसलमान हिन्दी–कवि, पृ. 65
10. शिवेन्द्र नाथ बशू – संगीत समुच्चय (उपाद्धात)
11. विश्वनाथ सिंह चरित्र, पृ. 49–50
12. निज अवलोकन के आधार पर। गंगाराम रचित संगीत रत्नाकर की हस्तलिखित टीका (सरस्वती कोष, वस्ता नं. 147)
13. बाबूलाल गोस्वामी – मृदंग सम्राट कोदऊ सिंह, 'बाबू शारदा प्रसाद अभिनंदन ग्रंथ' का लेख।
14. हमारे संगीत रत्न नामक पुस्तक (प्रथम भाग पृ.191) में दिलावर खाँ को मुबारक अली का पुत्र बताया गया है। दिलावर खाँ के कब्र पर गड़े हुए शिलालेख के अनुसार यह परिचय प्रमाणिक है। इस शिलालेख से रीवा की जनश्रुति भी प्रमाणित होती है।